

हिन्दी दलित साहित्य में समाज, संस्कृति एवं संघर्ष

डॉ. जोगिन्द्र कुमार यादव

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू)

क्षेत्रीय केंद्र, चण्डीगढ़

शोध संक्षेप

प्रस्तुत शोध पत्र में दलित साहित्य में समाज, संस्कृति और संघर्ष का अध्ययन किया गया है। दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है जो समाज व्यवस्था के तहत सबसे निचले पायदान पर होता है। वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत की श्रेणी में रखा, उसका दलन हुआ, उसे दबाया गया, उसका शोषण हुआ। चूंकि समाज का यह वर्ग सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से पिछड़ा होने के कारण सदियों से घृणा, तिरस्कार व शोषण का शिकार होता रहा है। इस वर्ग को शिक्षा प्राप्त करने, कुओं, तालाबों से पानी भरने, विकास के अवसरों एवं मन्दिरों आदि पवित्र स्थानों में प्रवेश से लम्बे समय तक वंचित रहना पड़ा। सवर्ण जातियों के अत्याचारों से भयभीत होकर कुछ जातियां वन्य और बीहड़ों तथा पहाड़ी क्षेत्रों में भाग गईं। ये जातियां मैदानी क्षेत्रों से कट गईं। वर्तमान में इन जातियों को अनुसूचित जनजाति के नाम से जाना जाता है। मैदानी क्षेत्रों में शेष बची जातियां सवर्ण जातियों का शिकार होती रहीं जिन्हें अनुसूचित जाति का नाम दिया गया। दलित साहित्य इन जातियों के उत्थान एवं विकास में कितना कारगर सिद्ध हुआ है, उक्त शोध पत्र के माध्यम से रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदान ऐसी सभी प्रकार की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सुविधाओं के दृष्टिगत प्रशासन एवं सरकार के प्रयासों का उल्लेख भी इस शोध पत्र में किया गया है।

मुख्य शब्द:

दलित – दहन और दमन, दबाया गया, उत्पीड़ित, शोषित, उपेक्षित। लत्ता – कपड़े। सहर – शहर। देहरी – दहलीज़, दरवाजा।

प्रस्तावना:

दलित साहित्य की अवधारणा अत्यंत प्राचीन है। दलित यानि उत्पीड़ित एवं शोषित व्यक्ति। प्राचीन काल में जाति का आधार आर्य व अनार्य होता था। इसमें आर्य जाति को श्रेष्ठ माना गया था जबकि अनार्य निम्न श्रेणी में आते थे। तत्पश्चात् वर्ण व्यवस्था आरम्भ हुई, जो कर्म पर आधारित थी। वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत समाज चार भागों में विभक्त था— ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र। वैदिक युग में निम्न जाति को चण्डाल, मध्य युग में अछूत एवं ब्रिटिश काल में दलित वर्ग का नाम दिया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इन्हें अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति का नाम दिया गया। नाम जो भी रहा हो, इस वर्ग की समस्याएं आज भी ज्वलंत समस्याओं के रूप में हमारे सामने हैं।

सामाजिक-व्यवस्था के कारण दलित असम्मान का पात्र बना रहता है, चाहे वह सर्वगुण सम्पन्न ही क्यों न हो। किसी भी चुनौती का सामना करते समय जाति सदैव दलितों को परस्पर बांटने और कमजोर करने का एक शक्तिशाली हथियार बनती है। जातिवाद के कारण ही फुले और अम्बेडकर जैसे देशभक्तों पर ऊंगली उठाई गई। समाज का यह वर्ग सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से पिछड़ा होने के कारण सदियों से घृणा, तिरस्कार व शोषण का शिकार होता रहा है। इस वर्ग को शिक्षा प्राप्त करने, कुओं, तालाबों से पानी भरने, विकास के अवसरों एवं मन्दिरों आदि पवित्र स्थानों में प्रवेश से लम्बे समय तक वंचित रहना पड़ा। सवर्ण जातियों के अत्याचारों से भयभीत होकर कुछ जातियां वन्य और बीहड़ों तथा

पहाड़ी क्षेत्रों में भाग गई। ये जातियां मैदानी क्षेत्रों से कट गईं। वर्तमान में इन जातियों को अनुसूचित जनजाति का नाम दिया गया है। मैदानी क्षेत्रों में शेष बची जातियां सवर्ण जातियों का शिकार होती रहीं जिन्हें अनुसूचित जाति नाम दिया गया।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध पत्र दलित साहित्य के अन्तर्गत दलित समाज के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालता है। शोध पत्र सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश तथा दलित अस्मिता के लिए संघर्ष आदि पर भी प्रकाश डालता है। ब्राह्मणवादी मानसिकता के चलते समाज के प्रबुद्ध वर्ग का उल्लेख भी इसमें हुआ है। उक्त शोध पत्र में सर्वेक्षण विधि को अपना कर सामग्री एकत्रित की गई है।

दलितोत्थान में लेखकों का योग:

इतिहास साक्षी है कि अनेक विद्वानों एवं समाज सुधारकों ने दलित वर्ग के विकास एवं उत्थान के लिए संघर्ष किया। महात्मा गांधी ने इन्हें 'हरिजन' की संज्ञा दी। स्वतंत्रता के बाद यद्यपि दलित वर्ग के विकास के लिए काफी प्रयत्न किए गए फिर भी यह वर्ग समाज के अन्य वर्गों के जीवन स्तर के बराबर नहीं पहुंच पाया है। दलित समस्या के चलते अमानवीय व्यवहार के किस्से लेखन में अकसर मिलते हैं। दलित वर्ग इस सामाजिक अन्याय के विरुद्ध और अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष सिर्फ साहित्य के माध्यम से ही कर सकता है। भारतीय समाज एवं साहित्य में दलित विचारधारा एक सशक्त सामाजिक आन्दोलन के रूप में उभर कर सामने आ रही है। आज का युग परिवर्तन का युग है। दलित साहित्य और दलित-अस्मिता की पहचान पर सशक्त एवं खुले रूप में बहस हो रही है, लेकिन अभी भी लेखकों और विद्वानों के अनुसार दलितों की मुक्ति का रास्ता कितना तय हुआ, कोई नहीं जानता। आज

इस पर गहन चिन्तन की आवश्यकता है कि दलितों के उत्थान के लिए कौन-सा दृष्टिकोण अपनाया जाए, जिससे उसका सही रूप सामने आ सके और उसे सही मायनों में समझा जा सके। इस कार्य के लिए जहां समाज अहम भूमिका निभा सकता है वहीं सरकार व प्रशासन की भी महती जिम्मेदारी बनती है कि इस वर्ग के उत्थान में भरपूर योगदान दें।

सातवें दशक में महाराष्ट्र में दलितों के उत्थान के लिए वहां के दलित कवियों ने एक जन आन्दोलन आरम्भ किया था जिसे 'दलित पैथर्स' का नाम दिया गया था। ये वे कवि एवं बुद्धिजीवी थे जिनमें से अधिकांश लोगों ने अपना प्रारम्भिक जीवन दलित बस्तियों एवं झुग्गी झोपड़ियों में व्यतीत किया था। इनका मत था कि आजादी के लम्बे अन्तराल के बाद भी दलितों को वह सम्मान प्राप्त नहीं हो सका था, जिसकी डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अपेक्षा की थी। फलतः आज भी इन लोगों को अन्याय एवं अनैतिकता का सामना करना पड़ता है। नवें दशक में दलित साहित्य की विभिन्न विधाएं सामने आयी हैं। इन विधाओं में दलित आत्मकथाओं ने दलित साहित्य को नई दिशा दी है। दलितों का यथार्थ वास्तवविक रूप उनकी आत्मकथाओं में ही अंकित होता है। दलित आत्मकथाओं में लेखक अपने समाज का सम्पूर्ण दारिद्र्य, अज्ञान, यातनाओं, पीड़ाओं और शोषण का बड़ा ही तीखा और यथार्थ चित्रण करते हैं। दलित आत्मकथाओं के विषय में डॉ. भगवान दास का कहना है, "आत्मकथा लिखना दलितों के लिए फायदेमन्द होगा, क्योंकि इस तरह न केवल इतिहास जिन्दा रहेगा बल्कि वे अनुभव भी जिन्दा रहेंगे जो गलत काम करने वालों की सही तस्वीर तथा भविष्य में प्रेरणा देने का जरिया भी बन सकेंगे।" दलित साहित्य दलितों की सामाजिक स्थिति को

स्वर देने का काम करने के साथ-साथ समाज में सामाजिक चेतना और अस्मिता बोध को जगाती हैं। डॉ. विमल थोरात ने लिखा है, “दलित आत्मकथाएं आज दलित समुदाय के विभिन्न आयामों को अपने अन्दर समेट कर शोषण के उस हर पहलू की एक समाजशास्त्रीय चिकित्सक की दृष्टि से चीरफाड़ करके सामाजिक व्यवस्था और उसके अन्तर्सम्बन्धों की पड़ताल करता हुआ दिखाई देता है।”¹ दलित साहित्य के माध्यम से संघर्ष के नये-नये रूप सामने आये हैं और दलितों की सही पहचान हो पायी है। ‘अपने-अपने पिंजरे’ के लेखक मोहनदास नैमिशराय के विचारों में, “हिन्दी में जितनी भी आत्मकथाएं आएंगी, दलित साहित्य का फलक उतना ही बढ़ेगा।”

अस्मिता के लिए आक्रोश एवं संघर्ष:

दलित आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से दलित समुदाय की गरीबी, गुलामी और यातना की दिल दहलाने वाली जो तस्वीरें चित्रित की हैं वे वास्तव में सराहनीय हैं। डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन अपनी आत्मकथा ‘चमार’ में दलितों के साथ सवर्णों का जो व्यवहार रहा, उसके विषय में लिखते हैं, “धन्य है मेरा देश भारत। किस वर्ग से बढ़कर है यह देश जहां मेरी मां-बहनों की तुलना पशुओं से की जाती है और उनसे पशु जैसा आचरण किया जाता है। ...सदियों से शब्दों के पत्थर फेंके जाते रहे हैं हमारी ओर। हम उनके सेवक जो ठहरे, तो आज मैं इन्हें वापस करता हूं। स्वीकार हो हजूर। दलित लौटाना चाहता है आपको आपकी भाषा, आपका व्यवहार।” उक्त पंक्तियों में लेखक के मन में व्यवस्था के प्रति भरे आक्रोश का चित्रण हुआ है।

अपनी आजीविका के लिए कैसे-कैसे काम करने पड़ते थे। डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन अपने बचपन के बारे में लिखते हैं, “मैं ताऊ के

साथ फुटपाथ पर बैठा बूट-पॉलिश किया करता था, साइकिलों के टायर सिलता था और आस-पास पेंठ बाजारों में जूते गांठने जाया करता था।” गरीबी, बेरोज़गारी और अर्थ के अभाव के कारण अर्थी पर फेंके जाने वाले पैसों को इकट्ठा करने में भी दलितों को कोई हिचकिचाहट नहीं होती थी। नैमिशराय ने भी यह सब दरिद्रता के कारण ही किया, “अर्थी के ऊपर फेंके गये पैसे उठाने के लिए बा और ताई मां ने कभी मना नहीं किया था।” मोहनदास नैमिशराय आत्मकथा ‘अपने-अपने पिंजरे’ में वर्ण-व्यवस्था के नकाब को उतारने के लिए संघर्षरत हैं। उन्होंने आत्मकथा की भूमिका में लिखा है, “व्यक्ति हो या समाज उसे अपने हक एवं अधिकार स्वयं ही लेने होते हैं। बैसाखियों पर जीवन नहीं चलता। चलेगा भी तो कितने दिन.....।” प्रकृति के पश्चात मनुष्य की दूसरी पाठशाला उसका सामाजिक परिवेश होता है, लेकिन भारतीय समाज वर्ण और जाति-व्यवस्था पर आधारित है। सवर्ण समाज स्वार्थ के लिए दलितों का इस्तेमाल करता रहा है। ‘जूठन’ में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हिन्दू समाज की विकृतियों का प्रामाणिक पर्दाफाश किया है। वर्ण-व्यवस्था ने दलितों को ऐसे घाव दिए हैं जो असहनीय हैं। लेखक ‘जूठन’ के माध्यम से गांव के भीतरी जीवन की तस्वीर दिखाते हैं, “अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस को छूना बुरा नहीं था, लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इन्सानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म, इस्तेमाल करो, दूर फेंको।”

दलितोत्थान की चाहे कितनी भी बड़ी-बड़ी बातें की जाए, किन्तु इस जाति का सच ज्यों का त्यों रहता है। सूरजपाल चौहान बेशक एक अधिकारी हैं और अन्य दलितों की अपेक्षा

साफ-सुथरे भी रहते हैं, लेकिन गांव के सवर्णों के लिए आज भी उनकी पहचान एक भंगी के रूप में ही है। यह कड़वा सच तब सामने आता है जब सूरजपाल अपनी पत्नी व बच्चों को लेकर गांव जाते हैं। रास्ते में जमींदार से पीने के लिए पानी मांगते हैं। जमींदार को जब उनकी जाति के बारे में मालूम हुआ तो दांत पीसता हुआ बोला, “अरे भंगनिया नेक पीछे कू हट के पानी पी, यह शहर न है गांव है। मारे लठिया के कमर तोड़ दी जाएगी....भंगिया और चमट्टा के सहर (शहर) में जाके नए-नए लत्ता (कपड़े) पहन के गांव में आ जात हैं, कुछ पतौ न चलतु कि जे भंगिया के है कि नाथ।”

ओमप्रकाश के पिता चाहते थे कि बेटा पढ़ाई-लिखाई से ही जाति सुधार सकता है। लेखक ने अपने पिताजी के बारे में लिखा है, “वे मुझे कोई काम नहीं करने देते थे। बस, पढ़ाई करो। कहते थे, पढ़-लिखकर अपनी जाति सुधारो।” ओमप्रकाश के पिता चाहते थे कि जिस नरक में हम रहे हैं उससे हमारे बच्चे बाहर निकलें। जब स्कूल में मास्टर ओमप्रकाश से झाड़ू लगवाते हैं, तो लेखक के पिता साहस के साथ मास्टर का सामना करते हैं और आक्रोश भरे शब्दों में कहते हैं, “कौण सा मास्टर है वो द्रोणाचार्य की औलाद, जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवाते हैं।मास्टर हो इसलिए जा रहा हूँ.... पर इतना याद रखिए मास्टर.... यो चूहड़े का यहीं पढ़ेगा.... इसी मदरसे में, और यो ही नहीं इसके बाद और भी आवेंगे पढ़ने कू।” यह एक दलित का साहस था, साथ ही सारी समाज व्यवस्था के प्रति खुला विद्रोह भी जो सदियों से उनके भीतर जमा था। बच्चे की पढ़ाई के लिए वे सब कुछ करते हैं जो एक चेतनशील व्यक्ति को करना चाहिए। वाल्मीकि जब अपने भाई की शादी में ‘सलाम’ प्रथा का विरोध करते हैं तो पिता को खुशी होती है और उसकी बातों

से प्रभावित होकर कहते हैं, “मुंशी जी बस तुझे स्कूल भेजना सफल हो गया है.... म्हारी समझ में बी आ गया है.... ईब इस रीत को तोड़ेंगे।”

इस तरह की प्रथाओं को तोड़कर दलित समाज में बराबरी के व्यवहार की अपेक्षा बढ़ेगी और आत्मसम्मान भी जागेगा। लेखक सूरजपाल चौहान के अन्दर भी आत्मसम्मान कूट-कूट कर भरा है। आशा रानी व्होरा को आक्रोश भरे शब्दों में चाय पीने को मना करते हैं और अपनी प्रतिष्ठा को मद्देनजर रखते हुए कहते हैं, “नहीं पीनी मैंने तुम्हारी चाय, तुम्हारे इस एक कप चाय में करोड़ों दलितों का अपमान भरा है। अपमान के घूंट बार-बार पीने की आदत अब मैं भूल चुका हूँ।” सूरजपाल चौहान ने हिन्दूवादी मानसिकता का विकृत चेहरा दर्शाकर दलितों के सम्मान के सवाल को उठाया है। भूमिका में आत्मकथा लिखने के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है, “मेरा इस आत्मकथा को लिखने का उद्देश्य भी यही है कि समस्त समाज के लोग इसे पढ़ें और अपने इर्द-गिर्द बुने हुए साजिश जाल को समझें। यदि इस पुस्तक से भारतीय समाज के लोगों को जोड़ने वाले रस्से को कोई छोटा धागा भी बन सका तो मैं इसे सार्थक समझूंगा।”

दलितों के प्रति शिक्षकों की मानसिकता :

ब्राह्मणवादी मानसिकता से ग्रस्त स्कूली शिक्षकों के मन में भी दलितों के प्रति उसी तरह की पूर्व धारणाएं और घृणा है, जिस तरह दलितों के प्रति सामान्य सवर्ण में होती है। एक शिक्षित व्यक्ति की यह सोच गुरु-शिष्य व शिक्षा प्रणाली पर प्रश्न चिह्न लगाती है। दलित आत्मकथाओं में लेखकों ने शिक्षा तन्त्र की नग्नता का पर्दाफाश किया है। ‘जूठन’ में वाल्मीकि ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि शिक्षक समुदाय जाति भेद की पूर्वाग्रही भावना से किस प्रकार ग्रस्त है, “अध्यापकों

का आदर्श रूप जो मैंने देखा था वह अभी तक मेरी स्मृति से मिटा नहीं है। जब भी कोई आदर्श गुरु की बात करता है, तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं जो मां-बहन की गालियां देते थे।" शिक्षक का व्यवहार शिक्षक पद की गरिमा के एकदम विपरीत है। तीन दिन स्कूल का विद्यार्थी लगातार स्कूल में झाड़ू लगाता रहा, लेकिन स्कूल के मास्टर को उस विद्यार्थी पर कोई तरस नहीं आया। कोई दलित शिक्षा ग्रहण करने का विचार भी लाता था तो सवर्ण मानसिकता से ग्रस्त शिक्षक दलितों को विद्यालय की देहरी से ही वापस कर देता था। सूरजपाल चौहान ने आत्मकथा 'तिरस्कृत' में संस्कृत के अध्यापक वेदपाल शर्मा के विषय में लिखा है कि वह जाति का ओछापन किस तरह याद दिलाते रहते थे। एक दिन सूरजपाल की ओर संकेत करते हुए कहा था, "यदि देश के सारे चूहड़े-चमार पढ़ लिख गए तो गली-मौहल्लों की सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा?" इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि शहर के स्कूल का अध्यापक दलित को गली-मौहल्लों की सफाई और जूते बनाने के लिए अनपढ़ रखना चाहता है और गांव का अध्यापक खेतों में काम करने के लिए। इसी तरह आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' में जब पी.टी. इंस्ट्रक्टर स्कूल में वर्दी का मुआयना करते हैं, तो लेखक और उनके दलित साथियों का अपमान करते हुए कहते हैं, "अबे तुमसे पढ़ने के लिए कौन कहता है। बस जूते-चप्पल बनाओ और आराम से रहो। चले आते हैं ससुरे न जाने कहां-कहां से।" इसी प्रकार कौशल्या बैसंत्री अपनी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में अपने जीवन के यथार्थ को, शिक्षकों के क्रूर व्यवहार को और सामाजिक जातिय अत्याचारों को उजागर करते हुए लिखती हैं, "जब मैंने कन्या पाठशाला में

पांचवी कक्षा में प्रवेश लिया तब स्कूल की फीस ज्यादा थी, एक रूपये बारह आने। बच्चों की फीस देना मां-बाप के सामर्थ्य के बाहर थी। बाबा ने हैडमिस्ट्रेस से बड़ी विनती की कि वे फीस नहीं दे सकते। बहुत मुश्किल से वह मान गई और कहा पढ़ाई अच्छी न करने पर निकाल देगी। बाबा ने हैडमिस्ट्रेस के चरणों के पास अपना सिर झुकाया दूर से, क्योंकि वे अछूत थे स्पर्श नहीं कर सकते थे।"

निष्कर्ष :

अतः दलित साहित्य के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि आत्मकथाकारों के अतीत में सुखद यादें कोई नहीं हैं, सिर्फ घोर दरिद्रता, गंदगी, अपमान में बिताए दिन और बचपन, जवानी सभी जाति की मार से ग्रसित हैं। गरीब होने के साथ आर्थिक-सामाजिक शोषण उनकी जिन्दगी को और भी बदतर बना देता है। दलित साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि रही है कि इनके माध्यम से प्रत्येक लेखक यही सन्देश देना चाहते हैं कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति की पहचान इंसान के रूप में हो न कि जाति के रूप में। जाति-उपजाति से जुड़े भेदभाव को दूर कर शिक्षित बनाने, संगठित होने और संघर्ष करने की भी प्रेरणा देते हैं। अपने-अपने अनुभवों के आधार पर लेखकों ने धर्म और संस्कृति के नाम अंधविश्वासों, रूढ़ियों और गलत रीति-रिवाजों पर गहरा आक्षेप किया है।

दलितों के पास रोजी-रोटी का कोई वैकल्पिक साधन नहीं था, इसीलिए सवर्णों के घरों की सफाई, मरे हुए जानवरों को उठाना और उनकी खाल उतारना, सवर्णों के घरों से जूठन लाकर पेट भरना जैसे घिनौने कार्य उन्हें करने पड़ते थे। जी-तोड़ मेहनत करने के बावजूद भी दलितों के हिस्से में क्या आता था। उक्त साहित्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि भारतीय वर्ण-व्यवस्था ने दलित जाति



के रूप में समाज के एक बड़े समुदाय को समस्त मानवीय, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक अधिकारों से हजारों वर्षों तक वंचित रखने का अमानवीय कार्य किया है। इस समूची क्रूरता के प्रति दलितों को सचेत करते हुए संघर्षरत होने का आह्वान ही दलित लेखकों द्वारा किया गया है। शिक्षा पद्धति के विरुद्ध भी अपना आक्रोशपूर्ण विरोध दर्ज कराते हुए दलित समाज में शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित किया है।

दलित आत्मकथाएं दलित समाज की समस्याओं से हमारा परिचय करवाती हैं जिसकी वास्तविकता से हम अनभिज्ञ थे। यदि लोग उस सामाजिक जिन्दगी से परिचित भी थे, तो उससे टकराने का साहस उन्होंने कभी नहीं किया। दलित आत्मकथाकारों ने जहां व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया

है वहीं दलितों के उत्थान एवं विकास के लिए उनके अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने का आह्वान भी किया है।

आभार एवं संदर्भ :

- ¹ माता प्रसाद, दलित साहित्य में प्रमुख विधाएं।
- ² मोहनदास नैमिशराय, अस्मिताओं के संघर्ष में दलित समाज।
- ³ मोहनदास नैमिशराय, अपने-अपने पिंजरे।
- ⁴ ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूटन।
- ⁵ सूरजपाल चौहान, तिरस्कृत।
- ⁶ कौशल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप।
- ⁷ डॉ० भीमराव अम्बेडकर ए अछूत कौन और कैसे।
- ⁸ पी०एन० सिंह, अम्बेदकर चिंतन और हिन्दी दलित साहित्य।
- ⁹ देवेन्द्र चौबे, आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श।
- ¹⁰ राजेन्द्र यादव, हंस, जून, 2005, पृष्ठ 75
- ¹¹ तेज सिंह, अपेक्षा, जून-सितम्बर, 2003, पृष्ठ 102